Chap-2

द्वितीय अध्याय

पूर्ववर्ती उपन्यासों में नारी चित्रण

1. प्रेमचन्द पूर्व युग
2. प्रेमचन्द युग
3. प्रेमचन्दोत्तर युग

पूर्ववर्ती उपन्यासों में नारी चित्रण

हिन्दी साहित्य जगत की गद्य विधाओं में उपन्यास का अपना महत्व है, बल्कि यह कहा जाये कि गद्य विधाओं में उपन्यास का स्थान अग्रणी है तो अतिशयोक्ति न होगी। मानव जीवन का प्रतिबिम्ब व्यापक और सजीव रूप में उपन्यास में प्रस्तुत होता है।

हिन्दी गद्य साहित्य के जनक भारतेन्दु को सबसे पहले उपन्यास के अभाव का अहसास हुआ इनका प्रथम प्रकाशित उपन्यास 'मालती' है, इन्होंने अपना नवीन उपन्यास 'हमीर हठ' आरम्भ किया, लेकिन वे प्रथम परिच्छेद लिखकर चल बसे। इनके बाद पं. बालकृष्ण भट्ट का नाम आता है। ये दोनों ही हिन्दी उपन्यास की सर्जना के लिए अग्रगण्य माने जाते हैं। भारतेन्दु युग में भले ही उपन्यासों का जन्म हुआ, पर इस युग में नाटकों की रचना ज्यादा हुई, इसलिए भारतेन्दु युग उपन्यासों के लिए बाल्यकाल था। इस युग में हिन्दी उपन्यासों का बीजारोपण तो हो गया, परन्तु विकास में अभी देरी थी। इसके बाद द्विवेदी युग आया। यह युग उपन्यासों के अनाधिक्य के लिए प्रसिद्ध है, इस युग को अनुवाद का युग कहते हैं, क्योंकि इस युग में विभिन्न भाषाओं के उपन्यास हिन्दी में अनूदित होकर सामने आये। इन उपन्यासों में ऐतिहासिक, सामाजिक, भावना प्रधान रचनाएं तो थीं पर

इनमें जीवन की समस्याएं नदारद थीं। द्विवेदी युग में मौलिक रचनाएं भी आई और इस युग के सर्वाधिक लोकप्रिय उपन्यासकार थे देवकी नन्दन खत्री। इनके रचित उपन्यास 'चन्द्रकांता' और 'चन्द्रकान्ता संतति' से युग ने करवट बदली।

हिन्दी उपन्यास के तृतीय चरण को प्रेमचन्द युग के नाम से जाना गया। इस काल में सामाजिक समस्याओं और उनके समाधानों पर ही उपन्यास लिखे गये। प्रेमचन्द के 'गोदान' से इस तरह के उपन्यासों की नींव रखी गयी। इस युग के उपन्यासकारों में जयशंकर प्रसाद का नाम उल्लेखनीय है।

तदुपरान्त जो काल सामने आया, उसमें हिन्दी उपन्यास की दिशा और दशा दोनों ही बदल गये प्रेमचन्द की मृत्यु के पश्चात् उपन्यास साहित्य का भविष्य निराशाजनक सा प्रतीत होने लगा, किन्तु उस समय तक कुछ प्रभावशाली नवयुवकों ने हिन्दी उपन्यास जगत में पदार्पण किया। नई प्रतिभाओं का आगमन हुआ तो कई तरह के उपन्यासों का दौर आया जिनमें मनोविश्लेषणात्मक उपन्यास, यथार्थवादी उपन्यास, आंचलिक उपन्यास, प्रगतिवादी विचारधारा के उपन्यासों को स्थान प्राप्त है।

इस यात्रा का अन्तिम चरण (पंचम) जो कि 1947 से अब तक का है। इस काल में सर्वाधिक विकास और परिवर्तन के आयाम स्थापित हुए। इस युग में गांधीवादी विचारधारापरक उपन्यास, आंचलिक उपन्यास आये। पंचम चरण का आरम्भ तो स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से ही हो चुका था, लेकिन 1960 के पश्चात् के उपन्यासों में जो यथार्थ चेतना उभरकर आई वह रेखांकित करने योग्य है।

उपन्यासों में नारी-चरित्र उपलब्ध होते हैं उनके पीछे एक निश्चित मुकम्मिल पृष्ठभूमि रही है। मनुष्य के विचार, उसका चरित्र, उसका व्यक्तित्व इन सबके पीछे

देशगत एवं कालगत परिवेश की भूमिका को नकारा नहीं जा सकता। मनुष्य का व्यक्तित्व अपनी पारिपार्श्विक गतिविधियों एवं परिस्थितियों से निर्मित होता है। प्रसिद्ध इतिहासविद् शिरीन मेहता का कथन है - "No body can go above the millieu." [1] अतः साठ के बाद के उपन्यासों में जो नारी-चरित्र उभरा है, उसके सही-सही मूल्यांकन के लिए पूर्ववर्ती परम्परा का विहंगावलोकन आवश्यक समझा जा सकता है।

(क) प्रेमचन्द पूर्व युग के उपन्यासों में नारी-जीवन का चित्रण

पंडित श्रद्धाराम फुल्लौरी कृत ''भाग्यवती'' (1877) हिन्दी का प्रथम उपन्यास है। हिन्दी का यह प्रथम उपन्यास ही नारी-चेतना एवं नारी-शिक्षा से सम्बद्ध है। फुल्लौरी आर्यसमाजी, सुधारवादी पंडित हैं, अतः यह उपन्यास उन्होंने नारी-शिक्षा की प्रवृत्ति को केन्द्र में रखकर लिखा था। भाग्यवती आज की सुशिक्षित नारियों की तरह तो सुशिक्षित नहीं हैं, परन्तु उस युग में नारी जितना पढ़ सकती थी, उतनी शिक्षा उसकी थी। उस शिक्षा के कारण ही बाद में पति द्वारा त्याग दिए जाने पर एक पाठशाला में अध्यापिका का काम करते हुए आत्मनिर्भर ढंग से स्वाभिमानपूर्वक जीवन यापन करती है। बाद में जब उसके पति को अपनी गलती का एहसास होता है; तब वह उसे बुला लेता है। यहाँ यह तथ्य गौरतलब है कि भाग्यवती अपने पति से दबती नहीं है। वह अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व का परिचय देती है। इसके मूल में नारी शिक्षा का तथ्य ही कारणभूत है। प्रेमचन्द पूर्व काल में पंडित श्रद्धाराम फुल्लौरी के अतिरिक्त लाला श्री निवासदास, पंडित बालकृष्ण भट्ट, अयोध्यासिंह उपाध्याय, गोपालराम गहमरी, देवकीनंदन खत्री, मन्नन द्विवेदी प्रभृति

1- द टाईम्स ओफ इण्डिया- दिनांक 10-06-96- पृ-3

लेखकों के क्रमशः ''परीक्षा गुरू'' ''सौ अजान एक सुजान'', ''अधखिला फूल'', ''स्वतंत्र रमा परतंत्र लक्ष्मी'', ''लवंगी'', निःसहाय हिन्दु'', ''कल्याणी''प्रभृति उपन्यास मिलते हैं। इनमें फुल्लौरी, लाला श्री निवासदास, बालकृष्ण भट्ट, मन्नन द्विवेदी इत्यादि तो नवसुधारवादी लेखक थे। अतः उनकी नारी-विषयक अवधारणा उदार एवं रूढ़िग्रस्तता से मुक्त थी, परन्तु मेहता लज्ञाराम शर्मा, किशोरी लाल गोस्वामी, राधाकृष्णदास प्रभति लेखक पुरानी सनातनपंथी विचारधारा के थे। अतः उन्होंने नारी का चित्रण अपने सनातनी एवं सामंतवादी मानस के अनुरूप किया है। वे नारी-शिक्षा के भी घोर विरोधी रहे हैं। मेहता लज्ञाराम शर्मा कृत ''स्वतंत्र रमा परतंत्र लक्ष्मी'' का उद्देश्य ''भाग्यवती'' से नितान्त विपरीत ध्रुव पर है। इसमें रमा शिक्षित और स्वतंत्र विचारों वाली है और लक्ष्मी अशिक्षित और दूसरों पर निर्भर रहने वाली है। लेखक ने रमा की तुलना में लक्ष्मी के दाम्पत्य जीवन को अधिक सुखी बताया है और परोक्ष ढंग से यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि स्त्रियों को पढ़ाने से सामाजिक-पारिवारिक जीवन में समस्याएं पैदा होती हैं।

स्त्रियों के प्रति उनकी दृष्टि भी रीतिकालीन एवं भोगवादी रही है। गहमरी जी ने ''जासूसी'' उपन्यास लिखे हैं, जिनमें स्त्रियों की भूमिका कठपुतलियों सी रही है। खत्री जी का तो परिवेश ही सामंकालीन है। वहाँ कुछ तेजस्वी नारी-चरित्र उभरे हैं; परन्तु उनका भी परिचालन तो राजाओं और मंत्रियों द्वारा ही होता रहा है। मन्नन द्विवेदी के उपन्यासों में, विशेषतः ''कल्याणी'' में हमें नारी-विषयक गांधीवादी दृष्टिकोण मिलता है। यही दृष्टिकोण बाद में प्रेमचन्द में मिलता है। प्रेमचन्द पुर्व काल के सामाजिक उपन्यासों में उपर्युक्त उपन्यासों के अतिरिक्त नारी-चित्रण की दृष्टि से जगमोहनसिंह कृत ''श्यामा-स्वप्न'' (1888) ; लज्ञाराम शर्मा कृत ''आदर्श

दम्पत्ति'' (1904), ''बिगड़े का सुधार'' (1907) अथवा ''सती सुखदेवी'', ''आदर्श हिन्दू'' (1914), किशोरीलाल गोस्वामी कृत ''त्रिवेणी या सौभाग्यश्रेणी'' (1890), ''लीलावती या आदर्श सती'' ''चपला या नव्यसमाज'', पुनर्जन्म या सौतियाडाह'' (1907), ''माधवी-माधव या मदनमोहिनी'' (1909-10), ''अंगूठी का नगीना'' (1918); अयोध्यासिंह उपाध्याय कृत ''ठेठ हिन्दी का ठाठ या देवबाला'' (1899), ''अधखिला फूल'' (1907), ब्रजनंदन सहाय कृत ''सौन्दर्योपासक'' (1912) ''राधाकान्त'' आदि उपन्यासों को परिगणित कर सकते हैं।

जगमोहन सिंह के ''श्यामास्वप्न'' में ब्राह्मण कन्या श्यामा और क्षत्रिय कुमार श्यामासुन्दर की प्रणय-कथा को लिया गया है, हालांकि इसका प्रेमवर्णन मध्यकालिन ढांचे का है और सखी, दूती, प्रेमपत्र, मिलन, विरह आदि के चित्र विद्यमान हैं। उसके प्राकृतिक वर्णन संस्कृत कवियों की स्मृति ताजा करा देते है; तथापि इसमें निरूपित अंतरजातीय विवाह की समस्या उसे नव्यसमाज एवं नवीन सामाजिक मान्यताओं से सम्बन्द्ध कर देता है।

मेहता लज्ञाराम शर्मा प्राचीन भारतीय संस्कृति के पक्षधर थे और नवीन विचारों के विरोधी थे। उनके उपन्यास ''आदर्श दम्पति'' में पति-पत्नी दोनों ही भारतीय संस्कृति के अनुसार एक दूसरे को प्रेम करते हुए आदर्श जीवन व्यतीत करते हैं। यह एक आदर्शवादी उपन्यास है और भारतीय सामाजिक-पारिवारिक संदर्भ में प्राचीन परंपराओं की पक्षधरता करते हुए उनकी आदर्श परिणति की व्याख्या करता है।

''बिगड़े का सुधार या सती सुखदेवी'' का नायक वनमाली बाबू नयी

सभ्यता का हिमायती है और उसकी पत्नी सुखदेवी एक सती-साध्वी स्त्री है। बनमाली ने एम.ए. तक की शिक्षा प्राप्त की है और वह नयी रोशनी की धुन में होटल की एक नौकरानी मेम से ब्याह करता है, परन्तु कुछ ही दिनों में उसे वास्तविकता का ज्ञान होता है। परदेशीपन और नयी रोशनी का भूत उतर जाता है और अपनी सती-साध्वी स्त्री सुखदेवी को स्वीकार कर लेता है। अब उसे सुखदेवी ''स्त्रीयों की रानी'' सी प्रतीत होती है। इसकी कथा भी ''सौ अजान एक सुजान'' तथा ''स्वतंत्र रमा परतंत्र लक्ष्मी'' की परंपरा में आती है।

''आदर्श हिन्दू'' में पंडित प्रियानाथ और अनुज कान्तानाथ की कहानी को लिया गया है। प्रियानाथ की पत्नी प्रियंवदा एक आदर्श हिन्दू महिला है। कान्तानाथ की पत्नी सुखदा वस्तुतः दुखदा है और अपने पति से निरंतर कलह करती रहती है। तीर्थयात्रा में उसका सब कुछ लुट जाता है और अन्त में वह सुधर जाती है। इसमें लेखक ने ब्राह्मण कुटुम्ब में सनातन धर्म का दिग्दर्शन, हिन्दुत्व का आदर्श, तत्कालीन समाज की त्रुटियाँ, परमेश्वर-भक्ति का आदर्श आदि को प्रकारान्तर से प्रस्तुत किया है। भारतीय संस्कृति में निरूपित भारतीय नारी का आदर्श स्वरूप शर्माजी के उपन्यासों में व्यंजित हुआ है। किशोरी लाल गोस्वामी प्रेमचन्दपूर्व युग के एक महत्वपूर्ण उपन्यासकार हैं। ये निम्बार्क सम्प्रदाय के अनुयायी थे और उनके विचार भी सनातन हिन्दू धर्म के अनुकूल हैं। ''त्रिवेणी या सौभाग्य श्रेणी'' का नायक मनोहरदास एक धर्मप्राण व्यक्ति है। उसकी पत्नी त्रिवेणी एक आदर्श हिन्दू सती-साध्वी स्त्री है। नौका डूब जाने से मनोहरदास का अपनी पत्नी से वियोग हो जाता है। पत्नी वियोग से शोक संतृप्त होकर वह संन्यासी का जीवन-व्यतीत करने लगता है। तीन वर्ष बाद कुम्भ के मेले में त्रिवेणी और ससुर के पुनः दर्शन होते हैं।

पत्नी को पाकर उसका जीवन पुनः सुखमय हो जाता है। यहाँ एक आदर्श हिन्दू दम्पति और उनके आदर्शो का चित्रण हुआ है।

''लीलावती या आदर्श सती'' नामक उपन्यास में लेखक ने ''स्वतंत्र रमा परतंत्र लक्ष्मी'' वाली शैली में ही लीलावती और कलावती नामक दो स्त्रियों की कथा के माध्यम से पुराने प्राचीन आदर्शो की स्थापना और नवीन विचारों की भर्त्सना की है। लीलावती एक सती-साध्वी नारी हैं। वह ललित किशोर से प्रेम करती है। दूसरी तरफ कलावती जो लीलावती की दूर की बहन है, नव्य जीवन की चमक-दमक से प्रभावित है। उसका प्रेमी बालकृष्ण एक लम्पट व्यक्ति है, जिसके साथ भागकर कलावती सिविल-मैरिज करती है। उसकी वासना अतृप्त रहती है ; अतः मौका देखकर वह अपने नौकर के साथ भाग जाती है। फिर तो यह सिलसिला उसके जीवन का नियम बन जाता है। अपनी अबाध यौन-उच्छृंखलता के कारण एक घृणित रोग का शिकार होकर यमुना में कूदकर वह आत्महत्या कर लेती है। यहां दों विभिन्न परिणतियों के द्वारा विभिन्न विचारधाराओं को समान्तर लेते हुए भारतीय रूढ़िवादी आदर्श की लेखक ने हिमायत की है। ''पुनर्जन्म या सौतिया डाह'' का नायक सज्जनसिंह नामक एक जमींदार है। सज्जनसिंह की पत्नी सुशीला अभिमानी और कुटिल स्वभाव की है। अतः सज्जनसिंह सुंदरी नामक एक स्त्री से प्रेम करते हैं जो बहुत ही विनम्र और मृदु स्वभाव की हैं। इस बात को लेकर घर में नित्यप्रति कलह होते रहते हैं। अतः जब सुशीला सुंदरी के शील-स्वभाव से परिचित होती है, तब वह स्वयं आग्रहपूर्वक सुंदरी का विवाह सज्जनसिंह से करा देती है। सुशीला और सुंदरी सौतन होते हुए भी दो बहनों की तरह रहती हैं।

''माधवी-माधव या मदनमोहनी'' उपन्यास में माधव-माधवी नायक-नायिका

हैं और मदन-मोहिनी उपनायक-उपनायिका है। ये परस्पर प्रेम करते हैं। इनकी जोड़ी को लेखक ने आदर्श बताया है। इनका विवाह धर्मानुसार होता है इनके पथ में बाधा डालने वाले अधर्मी पात्रों का दुखद अन्त बताकर लेखक ने धर्म और नीति की श्रेष्ठता को प्रमाणित किया है। उसी प्रकार ''अंगूठी का नगीना'' में मदनमोहन और लक्ष्मी नायक-नायिका हैं, रामशरण खलनायक है। वह अपने छल-बल से लक्ष्मी को प्राप्त करना चाहता है, परन्तु उपन्यास के अन्त में सच्चे प्रेम की जय होती है और मदनमोहन और लक्ष्मी का विवाह हो जाता है।

अयोध्यासिंह उपाध्याय के उपन्यास ''ठेठ हिन्दी का ठाठ'' में अनमेल विवाह के दुष्ट परिणामों को चित्रित किया गया है। उसकी नायिका देवबाला का विवाह दहेज के कारण उम्र में बड़े एक अधेड़ व्यक्ति से किया जाता है। फलतः देवबाला का जीवन नरक-समान हो जाता है।

ब्रजनंदन सहाय पर बंगला के कथा-साहित्य का काफी प्रभाव परिलक्षित होता है। ''सौन्दर्योपासक'' उपन्यास में उन्होंने नायक के साली-प्रेम को चित्रित किया है। फलकः नायक की पत्नी भी दुःखी रहने लगती है और अंततः वह मर जाती है। नायक के लिए रास्ता खुल जाता है और ''आधी घरवाली'' घरवाली बन जाती है; परन्तु अन्ततः उसे भी तपेदिक (टी.बी) की बीमारी हो जाती है और अन्ततोगत्वा उसका भी निधन हो जाता है।

प्रेमचन्द पूर्वकाल के उल्लिखित उपन्यासों से यह निष्कर्ष निकलता है कि इन उपन्यासों में चित्रित नारियां प्रायः दो वर्गों में विभक्त हो सकती हैं। नवसुधारवादी लेखकों में सुशिक्षित नारी-पात्र मिलते हैं। उन लेखकों ने नारी-शिक्षा, विधवा-विवाह, अनमेल-विवाह, दहेज प्रथा जैसे नारी-चिन्ता से जुड़े प्रश्नों को भी उठाया

है। परन्तु सनातनपंथी लेखकों ने नारी-शिक्षा का विरोध करते हुए शिक्षित नारियों के दाम्पत्य-जीवन को असफल करार दिया है। इन लेखकों ने नारी के प्राचीन आदर्शो को ध्यान में रखते हुए सेवा, पतिभक्ति जैसे भावों को सर्वोपरि स्थान दिया है।

चरित्र-चित्रण की दृष्टि से इन नारी-पात्रों में जीवनता का अभाव परिलक्षित होता है। नारी का प्रायः भोगावादी चित्रण हुआ है। यहाँ पर या तो कुलीन, सम्भ्रान्त परिवारों की महिलाएं हैं या फिर अपने रूप और शरीर का सौदा करने वाली रूप-जीवनियां हैं। प्रायः लेखकों ने नारी-जीवन पर पड़ने वाले पाश्चात्य प्रभावों को हेय बताया हैं। खत्रीजी के उपन्यासों में नारी का सामन्तकालीन रूप ही सामने आया है; तो गहमरी जी ने नारी का भोगवादी दृष्टिकोण से चित्रण किया है।

वस्तुतः पूर्व प्रेमचन्द काल में हिन्दी उपन्यास का वास्तविक विकास नहीं हुआ था। नारी पात्र भी व्यक्तित्व-सम्पन्न और जीवन्त न होकर कठपुतलीनुमा लगते हैं।

(ख) प्रेमचन्द तथा प्रेमचन्द युग के उपन्यासों में नारी-जीवन का चित्रण –

सन् 1918 से 1936 तक का समय हिन्दी उपन्यास-साहित्य के इतिहास में प्रेमचन्द युग के नाम से अभिहित हुआ है। वस्तुतः हिन्दी के वास्तविक उपन्यास का श्री गणेश ही प्रेमचन्द जी से हुआ है। हिन्दी उपन्यासों को उसका वास्तविक गौरव प्रेमचन्द द्वारा ही प्राप्त हुआ है।

प्रेमचन्द जी का एकमात्र ऐतिहासिक उपन्यास है 'रूठी रानी' जो सामन्तकालीन परिवेश से युक्त एक अत्यन्त सामान्य उपन्यास है। यह उपन्यास सामन्तकालीन परिवेश का भले ही था, परन्तु लेखक ने अपने मिजाज का परिचय

उसकी नायिका ''उमादे'' के द्वारा दे दिया है। उसका विवाह मारवाड़ के राव मालदेव के साथ होता है। विवाह के उपरान्त अत्यधिक मद्यपान के कारण राव मालदेव ''भारिली'' नामक परिचारिका को ''उमादे'' समझकर प्रथम रात्रि उसके साथ बिताते हैं। उमादे को जब इस बात का पता चलता है, तो वह अत्यन्त क्रोधित होती है और आजीवन राजा से अलग रहती है। यद्यपि मालदेव की मृत्यु के बाद वह तत्कालीन प्रथानुसार सती हो जाती है। यहाँ उमादे के चरित्र में हमें एक तेजस्वी और स्वाभिमानी नारी के दर्शन होते हैं।

''असरारे-मआविद'' में लेखक ने एक महन्तजी और उनके चेले-चाटों की पोल खोली है। यहाँ नारी-पात्र मुख्य रूप से न आकर सामान्य भक्तिनों और वेश्याओं के रूप आये हैं। सन् 1906 में प्रेमचन्द जी का ''हमखुर्मा-ओ-हमसबाब'' (प्रेमा) प्रकाशित हुआ, जिसमें उन्होंने विधवा की समस्या को उठाया है, जिसका संबंध नारी जीवन से है। यही उपन्यास बाद में कुछ परिवर्तन के साथ सन् 1929 में ''प्रतिज्ञा'' के नाम से प्रकाशित हुआ। इसका नायक अमृतराय एक आदर्शवादी युवक है। प्रेमा उसे चाहती है, अमृतराय पूर्णा नामक एक विधवा से विवाह कर लेता है। प्रेमा दाननाथ से विवाह करती है जो एक बार अमृतराय को मारने के लिए धावा बोल देता है। पूर्णा दाननाथ पर गोली चला देती है और बाद में स्वयं भी मर जाती है। प्रेमा और अमृतराय पुनर्विवाह के बंधनो में बंध जाते है। इस प्रकार इस उपन्यास में लेखक ने रामकली, पूर्णा तथा प्रेमा इन तीन-तीन स्त्रीयों के विधवा विवाह करवाये हैं।

प्रेमचन्द हिन्दी के पहले लेखक है, जिन्होंने विधवा विवाह का खुलकर पक्ष लिया था, इस उपन्यास के नारी-पात्र अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व का परिचय देते हैं,

और सामाजिक रूढ़ियों के प्रति उनके मन में विद्रोह की भावना मिलती है। 'वरदान' उपन्यास में प्रेमचन्द जी ने प्रतापचन्द्र और विरजन के प्रेम की असफलता और अंत में उसके उदत्तीकरण को चित्रित किया है। आर्थिक विषमता के कारण प्रतापचन्द जैसा शिक्षित एवं गुणवान युवक विरजन को प्राप्त नहीं कर सकता और उसका विवाह कमलाचरण नामक एक आवारा, बदमाश, कबूतरबाज युवक से हो जाता है। दुर्व्यसन के कारण कमलाचरण जल्दी ही काल-कवलित हो जाता है और विरजन को अकाल वैधव्य भोगना पड़ता है। वह अपना ध्यान लिखने-पढ़ने में केन्द्रित करती है और अल्प समय में ही विदुषी एवं कवयित्री के रूप में उभरने लगती है। इस प्रकार विरजन के द्वारा प्रेमचन्द जी ने नारी-उत्थान एवं नारी-प्रवृत्ति के नये क्षितिजों का उद्घाटन किया है।

''सेवा सदन'' की सुमन हिन्दी उपन्यास-साहित्य की पहली नायिका है, जिसका चित्रण मनोवैज्ञानिक ढंग से हुआ है। ''सेवासदन'' अनमेल विवाह, विधवा समस्या, वेश्या समस्या; भ्रष्टाचार जैसे आयामों को स्पष्ट करता है। दहेज के अभाव में सुमन जैसी योग्य, सुशील एवं सुंदर लड़की का विवाह भी योग्य पात्र से नहीं हो सकता और उसे गजाधर जैसे कुपात्र के गले मढ़ दिया जाता है। अर्थाभाव में सड़ती सुमन वेश्या जीवन को अंगीकृत इसलिए करती है कि सामाजिक मूल्यों पर से उसका विश्वास उठ जाता है।

''सेवा सदन'' के पश्चात् प्रेमचन्द जी के 'प्रेमाश्रम' (1920), 'रंगभूमि' (1925), 'कायाकल्प'(1926), 'निर्मला'(1926), 'गबन'(1930) 'कर्मभूमि'(1932), 'गोदान'(1926), प्रभृति उपन्यास आते हैं। इनमें प्रेमचन्द जी ने सुखदा, निर्मला, जालपा, सोफिया, सकीना, धनिया जैसे कुछ सशक्त नारी-

पात्र दिये हैं। प्रेमचन्द के नारी-पात्रों में संघर्ष है, जिजीविषा है, रूढ़ियों और अन्धविश्वासों से टकराने का साहस है। वस्तुतः प्रेमचन्द जी चाहते हैं कि हमारे देश का नारी -वर्ग हजारों वर्ष की शास्त्रानुमोदित गुलामी से बाहर आयें। 'गबन' की जालपा को प्रारम्भ में आभूषण-प्रिय बताया है परन्तु अपने इसी आभूषण-प्रेम के कारण जब रमानाथ (उसका पति) भाग जाता है, तब मानो उसका कायाकल्प ही हो जाता है। तब वह आभूषण प्रेम के संकीर्ण आकर्षण से निकलकर देश प्रेम और मानव प्रेम की व्यापक सीमाओं का स्पर्श करती है। वह मजदूरी करना पसन्द करती है। भूखों मर जाना अच्छा समझती है किन्तु रोटियों के लिये दूसरों का गला काटना उसे पसन्द नहीं। अपने स्वाभिमान के कारण वह समस्त बाधाओं के बीच अडिग खड़ी रह सकने में समर्थ हो पाती है। 'गबन' की ही रतन भी अपने स्वाभिमान के कारण सब दुख झेल लेती है। किन्तु सामाजिक कुरीतियों व शोषण के विरूद्ध विद्रोह करके भी परिस्थितियों की विषमता इनके पाँव रोकती रहती है।

'गोदान' का होरी तो परम्परा और मर्यादा के नाम पर मिटता है, परन्तु परम्पराओं और प्रगति-विरोधी रूढ़ियों के खिलाफ विद्रोह करने की शक्ति धनियाँ में है। धनिया बड़ी ही जीवट वाली और जुझारू औरत है। धनिया गोदान की प्रमुख नारी पात्र है जिसके जीवन का कोना-कोना विद्रोह की ज्वाला से प्रज्वलित होता रहता है। धनिया की आवाज केवल धनिया की ही नहीं है- समस्त शोषित वर्ग का विद्रोह है। धनिया होरी के दब्बूपन को ललकारती है। मर्यादा के नाम पर अन्याय को सहने का विरोध करती है। वह सर्वत्र होरी के चरित्र की पूरक है। शोषित वर्ग का वह बाह्य आचरण जो परिस्थियों के सामने विवशतापूर्वक हमेशा समझौता करते चला जाता है, वह होरी के रूप में चित्रित हुआ है- और धनिया उस निःशेष

असहयोगी भावना की प्रतीक है जो होरीपन की ओट में प्रत्येक आघात के साथ अपने को प्रबलतर बनाती रहती है। इस धनिया को नष्ट कर देने की क्षमता बिरादरी में नहीं है। धनिया होरी की मृत्यु पर दिन भर की कमाई सुतली बेचकर बीस आने गाँव के पण्ड़ित के हाथ पर रख कर कह देती है- यही इनका गोदान है। प्रेमचन्द ने धनिया के चरित्र में बड़े गहरे और सजीव रंग भरे हैं। वह परिश्रमी है, अन्याय का विरोध करने वाली है, सबसे टक्कर लेने वाली है, साथ ही स्नेह प्रबल व सेवाभावी भी है।

'गोदान' की मालती को प्रारम्भ में चुलबुली और फैशनेबुल बताया है। इंग्लैण्ड के उन्मुक्त वातावरण से लौट कर आने के बाद मालती भारत के कड़े नैतिक बन्धनों को स्वीकार नहीं कर पाती। पुरूषों के साथ मित्रता करने व अंतरंग सम्बन्ध स्थापित करने में भी उसे कोई संकोच नहीं। मालती का उन्मुक्त निःसंकोच व्यवहार जहाँ पुरूषों को उसके प्रति आकृष्ट करता है; वहीं समाज में आलोचना का पात्र भी बनाता है। परन्तु बाद में वह जन-सेवा के पथ पर अग्रसर होते हुए संघर्षशीलता और कर्मठता की ओर मुड़ जाती है।

प्रेमचन्द जी के अधिकांश नारी पात्र तत्कालीन स्वाधीनता-आन्दोलन के किसी-न-किसी आयाम से जुड़े हुए प्रतीत होते हैं।

अनपढ़ होते हुए भी 'गोदान' में सिलिया की माँ जो आक्रोश व्यक्त करती है वह गौरतलब है। पं. दातादीन का लड़का मातादीन सिलिया चमारिन के साथ फँसा हुआ है। एक प्रसंग में सिलिया की माँ मातादीन को लताड़ते हुए कहती है- ''उसके साथ सोओगे, लेकिन उसके हाथ का पानी न पिओगे। तुम हमें ब्राह्मण बना दो। हमारी सारी बिरादरी बनने को तैयार है, जब यह समरथ नहीं है तो फिर तुम

भी चमार बनो। हमारे साथ खाओ-पिओ, हमारे साथ उठो-बैठो। हमारी इज़्ज़त लेते हो तो अपना धर्म हमें दो।''[1]

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रेमचन्द के नारी पात्र बदलते जमाने के तेवेरों का तीखापन लिए हुए हैं।

'निर्मला' उपन्यास की सुधा अपने कर्तव्य के प्रति सजग है वह यथार्थ की कटुता का सामना करते हुए कहती है- 'ऐसे सौभाग्य से मैं वैधव्य को बुरा नहीं समझती। दरिद्र प्राणी उस धनी से कहीं अधिक सुखी है, जिसे उसका धन साँप बनके काटने दौड़े। उपवास करना आसान है, विषैला भोजन करना उससे कहीं मुश्किल।'[2]

प्रेमचन्द युग के अन्य उपन्यासकारों में विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक, पांडेय बेचन शर्मा उग्र; भगवती प्रसाद वाजपेयी; ऋषभचरण जैन, जयशंकर प्रसाद; सियाराम शरण गुप्त; वृन्दावनलाल वर्मा; जैनेन्द्र आदि की परिगणना कर सकते है।

कौशिक जी अपने 'माँ' और 'भिखारिणी' जैसे उपन्यासों में नारी का आदर्शवादी दृष्टिकोण से चित्रण करते हैं , निम्न कोटि के नारी-पात्रों में उच्च मानवीय गुणों का दिग्दर्शन यह कौशिक जी की अपनी विशेषता है। कौशिक जी के पात्र त्याग, बलिदान और नैतिकता की प्रतिमूर्ति हैं। प्रेमचन्द के समकालीन प्रायः सभी उपन्यासकारों ने नारी का देवी या माँ का आदर्शवादी रूप ही चित्रित किया है। 'उग्र' जी के इस समय के उपन्यासों में 'घंटा', 'दिल्ली का दलाल', 'बुधुआ की बेटी' आदि उपन्यास मुख्य हैं। 'घंटा' में लेखक ने उच्चवर्गीय लोगों की पोल खोली है, अतः वहाँ उच्च वर्गीय लोगों में स्त्री-पुरूष के अवैध सम्बन्धों को चित्रित किया

1- गोदान - प्रेमचन्द- पृ- 253
2- निर्मला- प्रेमचन्द - पृ- 190

गया है। 'दिल्ली का दलाल' उपन्यास में वेश्या-जीवन की नारकीयता को उद्घाटित किया गया है। नारी-चित्रण की दृष्टि से उनका 'बुधुआ की बेटी' एक सशक्त उपन्यास है। रधिया भंगिन अत्यंत सुन्दर युवती है, गाँव के जमींदार का बेटा घनश्याम उसे प्रवंचित कर उससे शारीरिक संबंध स्थापित करता है, और बाद में अपनी बात से मुकर जाता है। अतः रधिया उसका प्रतिशोध समूचे पुरूष वर्ग से लेती है। वह लोगों को अपने प्रेम-पाश में फांसकर उन्हें पागल और बरबाद कर देती है।

भगवती प्रसाद वाजपेयी ने 'प्रेमपथ', 'पतिता की साधना', 'त्यागमयी' प्रभृति उपन्यासों में अधिकांशतः नारी-जीवन की विवशताओं को आदर्शात्मक ढंग से चित्रित किया है। ऋषभचरण जैन के उपन्यासों में समाज के यथार्थ का नग्न चित्रण हुआ है। 'दिल्ली का व्यभिचार', 'दिल्ली का कलंक', 'वेश्यापुत्र', 'बुर्खेवाली', 'दुराचार के अड्डे', 'तीन इक्के', 'जनानी सवारियाँ' जैसे उपन्यासों में नारी के लैंगिक शोषण को लेखक ने विशेषतः रेखांकित किया है। उनके 'भाई', 'गदर', 'तपोभूमि' जैसे उपन्यासों में तेजोदीप्त नारी पात्रों का चित्रण हुआ है। 'तपोभूमि' जैनेन्द्र कुमार के सहलेखन में लिखा गया उपन्यास है, जिसमें नारी के दो रूप मिलते हैं- एक 'धरिणी' जहाँ भावुकता, ममता, त्याग और बलिदान के भावों से युक्त हैं, वहाँ 'शशि' अधिक व्यवहार कुशल एवं स्वार्थी है। परन्तु इन दोनो नारियों में लेखन ने आत्माभिमान कूटकूट कर भरा है। 'गदर' में तो लेखक ने विद्रोहात्मक दृष्टिकोण अपनाया है। नानासाहब पेशवा की बैटी मैना उसके दीवान अजीमुल्लाखाँ से प्रेम करती है। अजीमुल्ला खाँ एक देशभक्त युवक है। अँग्रेजों के प्रति नाना साहब में विद्रोह की भावना को भड़काने वाली भी मैना ही है। इस प्रकार मैना के रूप में

एक अत्यन्त उज्जवल और तेजोदीप्त नारी चरित्र मिलता है।

जयशंकर प्रसाद के उपन्यास कंकाल में समाज द्वारा प्रताड़ित होने पर स्त्रियाँ विद्रोह करती हैं। उपन्यास की नारी पात्र घण्टी, लतिका और यमुना 'भारत संघ' में सम्मिलित हो जाती हैं। लतिका अपनी सम्पत्ति संघ को दान कर स्त्रियों की स्वयं सेविका पाठशाला आरंभ करना चाहती है। घण्टी भी सेवा कार्य करने को तत्पर है।

प्रसाद जी ने 'तितली' उपन्यास की नायिका को स्वाभिमानिनी नारी के रूप में चित्रित किया है।

स्त्री का अपने अस्तित्व के प्रति सजग होना और उसके लिए संघर्ष करना ही सबसे महत्वपूर्ण तथ्य है। पुरूष उसको कितनी ही महीयसी या गरिमामयी कहता रहे वस्तुस्थिति उसकी अपनी सचाई और अपने आत्मविश्वास में है। प्रसाद जी के नारी पात्र प्रायः भारतीय आदर्शों के पोषक हैं। वे नारी हृदय की उदात्त भावनाओं को समेटे हुए कर्तव्य पथ पर आरूढ़ हैं। हिन्दी के सामाजिक उपन्यासों की तुलना में ऐतिहासिक उपन्यासों के नारी पात्र अधिक जीवंत दिखलाई देते हैं। उनके चरित्रों के रंग बहुत गहरे है, भले ही रेखाएँ ऐतिहासिक आधार लिए हों, लेकिन उनके व्यक्तित्व एक विशिष्ट आभा लिये हैं। वृन्दावनलाल वर्मा के उपन्यासों के प्रधान पात्र नारियाँ ही हैं। मृगनयनी, झाँसी की रानी, अहल्या बाई बहुत सशक्त और तेजस्वी पात्र हैं।

वर्मा जी ने झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई के चरित्र को गरिमावान बनाया है जो स्वराज्य की रक्षा के लिए न केवल योजनाएँ बनाती है, बल्कि बहादुरी से लड़ती भी है। उसका चरित्र जीवंत रूप में पाठकों की चेतना में उतर जाता है। महारानी

अहल्या बाई का चरित्र भी अनेक गुणों का पुंजीभूत रूप है। 'मृगनयनी' उपन्यास की काल्पनिक नारी पात्र लाखी का चरित्र बहुत अप्रतिम और सजीव बन पड़ा है, वहाँ प्रेम का उदात्त रूप तो है ही, साथ ही वह समाज की रूढ़ियों को भी दृढ़ता पूर्वक ठुकरा देती है। लाखी का चरित्र एक अटल चट्टान की भाँति अडिग है। लाखी गौरवमयी है, समर्थ है, वह संघर्षो से खेलती है और हर पल सजग रहती है।

प्रेमचन्द्र काल में नारी कुछ कदम आगे बढ़ी है। अब वह केवल 'श्रद्धा' नहीं रही है। रीतिकाल की भाँति केवल 'भोग्या' भी नहीं रही है, केवल पत्नी भी नहीं रही है। वह जीवन-संघर्ष में पुरूष के साथ कन्धे से कन्धा मिलाने लगी है। पढ़-लिख कर आत्मनिर्भर होने के साथ-साथ वह सामाजिक-राजनीतिक गतिविधियों में हिस्सेदारी करने लगी है। हालांकि अभी भी स्त्री-पुरूष की असमानता बरकरार है, किन्तु पुरूष के अधिकार-क्षेत्र के वितान में एक छेद अवश्य हो गया है।

(ग) <u>प्रेमचन्दोत्तर युग के उपन्यासों में नारी-जीवन का चित्रण</u> (1936-60)

यहाँ पर प्रेमचन्दोत्तर युग को अध्ययन की सुविधा के लिए स्वतंत्रतापूर्व (1936-1947) और स्वातंत्रयोत्तर (1947-1960) जैसे विभागों में विभक्त किया गया है।

<u>स्वतंत्रतापूर्व प्रेमचन्दोत्तर युग</u> (1936-1947)

इस युग के उपन्यासों में दहेज प्रथा, विधवा-विवाह, नारी-स्वतंत्रता, नारी-शिक्षा, अनमेल विवाह आदि प्रश्नों को उकेरा गया है।

उक्त सीमा में 'अंग्रेजी' के 'सरकार तुम्हारी आँखो में' (1936) 'जीजी जी' (1943) तथा 'फागुन के दिन चार' (1955) जैसे उपन्यास आते है, जिनमें उन्होंने निरीह नारी के प्रति पुरूष-समाज की लम्पटता तथा कामुकता का नग्न

चित्रण किया है। भगवती प्रसाद वाजपेयी में सुधारवाद के साथ भावुकता भी दृष्टिगोचर होती है। स्त्री-पुरूष का शाश्वत प्रेम उनका प्रिय विषय है और इस काल में उनके 'पतिता की साधना' (1936) ; 'पिपासा'(1937) 'दो बहनें'(1940), 'निमंत्रण' (1942) आदि उपन्यास उपलब्ध होते हैं। वाजपेयी जी का दृष्टिकोण आदर्शवादी है और वे नारी के प्राचीन भारतीय आदर्श के पक्षधर रहे है। इस समय सियाराम शरण गुप्त का एक महत्वपूर्ण उपन्यास 'नारी (1936) उपलब्ध होता है।

हिन्दी साहित्य में मैथिलीशरण गुप्त की नारी विषयक अवधारणा को रेखांकित करने वाली निम्नांकित पंक्तियाँ बहुचर्चित रही है।

''अबला जीवन हाय! तुम्हारी यही कहानी
आँचल में है दूध और आँखों में पानी।''

'नारी' उपन्यास में सियारामशरण ने अपने अग्रज की परिकल्पना की प्रतिमूर्ति सामने रखी है। 'नारी' उपन्यास की पात्र एक असहाय एवं विवश नारी है, जिसका पति उसे आर्थिक एवं सामाजिक संघर्षो के बीच मझधार में छोड़कर चला गया है। वह अपने पुत्र हल्ली के साथ तमाम प्रकार के संघर्षो को झेलते हुए अनेक वर्षो तक अपने पति की प्रतीक्षा करती है और अन्ततः पति के मित्र अजित चौधरी से विवाह कर लेती है; जिसने उसके पति को ढूँढने में उसकी जी जान से सहायता की थी।

'निर्मला', 'नारी', 'त्याग पत्र' इस उपन्यासत्रयी ने नारी-जीवन की त्रासद स्थितियों को उकेरा है।

ऋषभचरहण जैन के प्रस्तुत काल के उपन्यासों में 'चम्पाकली' (1937), हिज हाईनेस (1937); मयखाना, (1938) तीन इक्के (1938) जनानी सवारियाँ (1939) प्रभृति उपन्यास मिलते है; जिनमें मुख्यतः वेश्या-समस्या, सामन्तकालीन

विलासिता तथा अभिजात वर्ग में व्याप्त यौन-विकृतियों का चित्रण हुआ है। चम्पाकली वेश्या होते हुए भी प्रेम के आदर्श सामने रखती है। 'जनानी सवारियां' में अनीति-धामों में लड़कियाँ कहाँ-कहाँ और कैसे-कैसे पहुँचायी जाती है उसका यथार्थ वादी चित्रण लेखक ने किया है।

उषा देवी मित्रा के दो उपन्यास 'पिया' और 'जीवन की मुस्कान' (1937- और 1939) में नारी जीवन की समस्याओं को उकेरा गया है। 'पिया' बाल-विधवा पपिहरा उर्फ पिया की कहानी है। वह जमींदार सुकान्त की भतीजी है, किन्तु अपने स्वतंत्र विचारों के कारण पाठको का ध्यान आकर्षित करती है। इसमें लेखिका ने विधवा से सम्बन्धित हिन्दू धर्म की सड़ी-गली रूढ़ियों पर व्यंग किया है, तो 'जीवन की मुस्कान' में नारी जीवन की असहायता तथा वेश्या समस्या को केन्द्रमें रखा गया है।

राजा राधिकारमण सिंह के आलोच्यकाल के उपन्यासों में 'रामरहिम' नारी जीवन से सम्बन्द्ध है। इसमें बेला और बिजली नामक दो नारी पात्रों के माध्यम से भारतीय नारी की धर्म-परायणता, त्यागमयता उससें उद्भूत यातना तथा पाश्चात्य संस्कारों पत्नी-स्त्री की धर्म-विमुखता, भोगवादिता और मौज मस्ती का चित्रण लेखक ने किया है। दो नारी-चरित्रो को आमने-सामने रखकर उनकी चरित्रगत विसदृशता के प्रकारान्तर से लेखक ने भारतीय समाज को सावधान किया है कि सही ऐसा न हो कि भारतीय स्त्रियां अपने ऊपर होने वाले अत्याचारों से उत्तप्त होकर पाश्चात्य ढंग के जीवन को अंगीकृत कर लें। कल्याण सिंह शेखावत द्वारा प्रणीत 'किसकी भूल' उपन्यास में हिन्दू विधवाओं पर हो रहे अत्याचारों का यथार्थ वर्णन किया है। नारी चेतना की दृष्टि से सर्वदानंद वर्मा द्वारा प्रणीत 'संस्मरण' तथा

'नरभेध' नामक उपन्यास भी महत्वपूर्ण है। प्रथम उपन्यास में उन्होने अनमेल विवाह के दुष्परिणामों को रेखांकित करते हुए भारतीय एवं पाश्चात्य नर-नारी के संबंधो को विश्लेषित किया है और यह बताने का यत्न किया है कि जहाँ पश्चिम के नर-नारी के संबंधो में मित्रता का भाव मिलता है वहाँ अपने यहाँ उसमें स्वामी और दास का संबंध दृष्टिगोचर होता है।

लाला रामजीदास वेश्य कृत 'सुघड़ गवारिन' (1938) जमींदारों की धृष्टता, कारिन्दों की करतूतें और मुकदमेबाजी पर आधारित है। इसमें लेखक ने हिन्दू संस्कृति के अनुरूप आदर्श स्त्री का चरित्र सामने रखा है। अतः उसे एक स्त्रीपयोगी शिक्षाप्रद उपन्यासों की कोटि में रखा जा सकता है। देवनारायण द्विवेदी कृत-दहेज (1936) दहेज प्रथा की विभीषिकाओं को लेकर लिखा गया है। इसमें लेखक ने निष्पादित किया है कि निर्धन पिताओं की गुणवान लड़कियाँ अपात्रों के गले मढ़ दी जाती है, जबकि दूसरी तरफ दहेज ही के कारण धनवानों के बहुत-से सुपात्र युवक सुशील, संस्कारी तथा सुन्दर पत्नियों से वंचित रह जाते हैं।

गोविन्द वल्लभ पंत के 'जुनिया' (1940) उपन्यास में उत्तराखंड के डोम जाति के लोगों के आर्थिक लैगिक शोषण को लेखक ने रेखांकित किया है। इसमें लेखक ने भूमिहीन किसानों की त्रासदी को भी रखा है। जमीन तो सारी गुसाई जी की है, फलतः कई एकड़ भूमि में हल चलाने के बावजूद किसान भूखा का भूखा ही रहता है। उनकी यह भुखमरी उनकी स्त्रियों के लैंगिक शोषण में कारणभूत बनती है।

आचार्य चतुरसेन शास्त्री के अनुज बंधु चन्द्रसेन कृत 'जीवनतप' उपन्यास समाज की विविध कुरीतियों; जैसे बाल-विवाह आदि को चित्रित करने वाला

उपन्यास है। हिन्दू समाज इन कुप्रथाओं से जर्जर हो रहा है और हजारों नारियाँ इन कुप्रथाओं के परिणामस्वरूप अपने भाग्य को कोसती तड़प रही हैं। इस उपन्यास में लेखक ने भारतीय नारी की विभीषिकाओं को भलीभांति चित्रित किया है।

नारी-जीवन से जुड़ा हुआ एक उपन्यास है-'देवदासी'। इसके लेखक नरसिंहराव शुक्ल ने नारी-जीवन से सम्बन्द्ध एक अन्य आयाम को यहाँ चिह्नित किया है। दक्षिण भारत में 'देवदासी' प्रथा के अन्तर्गत गरीब निम्नवर्ग की सुन्दर स्त्रियों का लैंगिक शोषण होता है। वस्तुतः इन देवदासियों का जीवन वेश्याओं के समान ही होता है। मंदिर के पुजारी तथा गाँव के मंदिर से जुड़े हुए बड़े लोग इन देवदासियों का उपभोग करते हैं। अतः यदि कुछ इतिहासकार उन्हें धार्मिक वेश्याओं का दर्जा देते हैं तो उसमें अत्युक्ति बिल्कुल नहीं है।

'नरमेघ' उपन्यास में उसका नायक देवेन्द्र अपनी पत्नी को शिक्षिका पद के लिए प्रोत्साहित करता है, क्योंकि वह प्रगतिवादी विचारों का है और सोचता है कि स्त्री की गुलामी के अनेक कारणों में एक उनकी आर्थिक परनिर्भरता भी है। डॉ. मन्मथनाथ गुप्त ने सेवा सदन की आलोचना करते हुए सुमन के अध: पतन के कारणों में यही प्रमाणित किया है कि भारतीय स्त्री आर्थिक दृष्टि से पुरूष पर निर्भर रहती है. जब वह अवलम्ब हट जाता है, तब स्त्री के पास सिवाय अपने शरीर के और कोई रास्ता नहीं होता, विशेषकर स्त्री यदि कुलीन जाति की है। कुमारी अवस्था में पिता की, यौवन में पति की और उसके बाद पुत्र की अधीनता में रहने के लिए जो और जितनी शिक्षा उपयुक्त है; वह और उतनी शिक्षा उसे मिली थी। वह स्वतंत्र रूप से अपने पैरों पर खड़ी नहीं हो सकती थी। ऐसी हालत में जब पति

ने उसको निकाल दिया, आश्रम से भी निकाल दिया तो उसके लिए आत्महत्या करने या वेश्या-जीवन ग्रहण करने के अलावा और कोई चारा नहीं रहा।

सन् 1941 तथा 1944 में अज्ञेय के दो उपन्यास आये- ''शेखर एक जीवनी भाग-1' तथा शेखर एक जीवनी भाग-2'' इसमें लेखक ने शेखर नामक एक अत्यंत आधुनिक पात्र को पाठकों के सम्मुख रखा है। प्रस्तुत उपन्यास के नारी-पात्र टाईप न होकर एक विशेष परिवेश से जुड़े हुए है, जिसे हम अभिजात वर्ग कहते है। ये सुशिक्षित एवं विशिष्ट प्रकार की साहित्यिक एवं सौन्दर्य की दृष्टि रखने वाले चिन्तन पक्ष पात्र है। इस प्रकार अज्ञेय द्वारा बहुत बड़े अभाव की पूर्ति हुई है, ऐसा हम कह सकते है।

<u>स्वातंत्रयोत्तर युग के उपन्यासों में नारी जीवन का चित्रण</u> (1947-60)

स्वतंत्रतापूर्व के उपन्यासों मे नारियों को लेकर जहाँ अत्याचार और शोषण मिलता है, वहाँ एक अंदरूनी शक्ति भी थी कि आजादी के बाद इसमें बदलाव आयेगा और अन्याय और शोषण की मात्रा कम होगी, परन्तु ऐसा हुआ नहीं है। अन्याय, अत्याचार और शोषण के स्वरूप बदल गए है। आजादी के बाद भी स्त्रियों की स्थिति में कोई गुणात्मक अन्तर आया हो ऐसा नहीं है। पहले दहेज के कारण अनमोल विवाह या वृद्ध विवाह होते थे अब दहेज के कारण दहेज हत्याएँ होने लगी है। स्त्रियों को जिन्दा जला दिया जाता है। यह जलात्कार और बलात्कार निरन्तर चल रहा है। नारी सुरक्षा के कायदों में छिद्र है कि धनवान; शक्ति-सम्पन्न, गुनहगार आसानी से बरी हो जाते है।

नागार्जुन के उपन्यास 'बलचनमा' के केन्द्र में तो बलचनमा है, परन्तु गाँव के जमींदार खेतिहर मजदूरिनों के साथ जो दुर्व्यवहार करते हैं, उसका यथार्थवादी

चित्रण उसमें हुआ है।

गाँव का जमींदार धर्म की दुहाई देकर बलचनमा की माँ से जमीन अपने नाम करवा लेता है, इतना ही नहीं उसकी बहन रेचनी को प्राप्त करने की कुचेष्टा भी करता है। इस उपन्यास में ग्रामीण क्षेत्रों में स्त्रियों पर जो अत्याचार होते हैं और उनका जो लैंगिक शोषण होता है उसका यथार्थ चित्रण मिलता है। 'भैरव प्रसाद गुप्त' ने अपने उपन्यास 'शोले' में लिखा है- ''जिन परिस्थितियों ने जकड़ कर शोभी का रक्त-मांस चूस लिया, उसके नारित्व; मातृत्व का गला घोंट दिया, उसके जीवन की सार्थकता को खत्म कर दिया, उसे शून्य बना दिया, उसकी जिम्मेदारी उस सामाजिक व्यवस्था पर है; जो ऐसी परिस्थितियाँ पैदा करती है; जो नारी पर पुरूष के पशुत्व का एक छत्र अधिकार देती है; सास को पतोहु के साथ एक खरीदी हुई दासी की तरह व्यवहार करने की क्षमता देती है और नारी को चुपचाप मिट जाने के लिए विवश कर पाती है। जब तक यह व्यवस्था नहीं बदलती, शोभी की तरह शून्य नारियाँ घर-घर सड़ती ही रहेंगी; उनका उद्धार नहीं हो सकता।''[1]

स्त्रयों के साथ होने वाले अमानुषी व्यवहार के कारण उनकी नैतिक चेतना कुन्द हो गई है। धार्मिक मठों में भी धर्म की ओट लेकर पाप-लीलाएँ चल रही हैं, जिनमें लक्ष्मी जैसी सधुआइनों का ज्वार में प्रभुसम्पन्न होने के लिए इस्तेमाल होता रहा है। रेणु लिखते हैं- 'मैला आँचल' में फूल भी है, शूल भी है, गुलाब भी। लेखक किसी से भी दामन बचाकर नहीं निकल पाया है।''[2]

तहसीलदार की बेटी कमली और डॉ. प्रशान्त की प्रणय-कथा भी उपन्यास में समानान्तर चलती रही है। कमली सुंदर, सुशील एवं भावुक किस्म की लड़की

1- शोले- भैरवप्रसाद गुप्त - पृ- 120-121

2- मैला आंचल- फणीश्वरनाथ रेणू- भूमिका से उद्धृत

है। यहाँ लेखक ने ग्रामिण क्षेत्रों में उच्च वर्ग की लड़कियों की जो अति-सुरक्षित स्थिति है उसका चित्रण किया है। डॉ. ममता के रूप में एक आधुनिक नारी का चित्रण मिलता है। लेखक ने ग्रामीण जीवन में चलनै वाले स्त्री-पुरूष संबंधो की खुली चर्चा की है। महन्त सेवादास, रामदास, लरसिंघ, नागाबाबा आदि लक्ष्मी सधुआइन के पीछे पड़े है। लक्ष्मी बालदेव पर आसक्त है। रामपिरया की माँ छितन से फँसी है, फुलिया अपनी माँ की सम्पत्ति से सहदेव मिश्र की आग बुझाती है। फुलिया की माँ सिन्धवा की रखैल थी। रमजूदास की पत्नी अपने खास भतीजे के साथ भाग गई थी। और गूजर टोली के कलरू के साथ रात-रात 'रास लीला' रचाती रही है। कालीचरण चरखा - मास्टरनी मंगलादेवी के प्रेमपाश में बंध जाता है; तो डॉ. प्रशांत कमली के प्रेमसूल में बंधकर विवाह के पहले ही उससे शारीरिक संबंध जोड़ लेता है। यह सब निम्न जातियों में ही हो रहा है ऐसा नहीं है; नया तहसीलदार हरगौरी सिंह खास अपनी मौसेरी बहन से रासलीला रचाता है। मैला आँचल की भाँति 'परती परिकथा'(1957) में भी ग्रामीण जीवन के उक्त आयामों को लिया गया है। नागार्जुन के उपन्यास 'वरूण के बेटे'(1957) में मछुहारिन स्त्रियों के जीवन को लेखक ने रूपायित किया है; इस उपन्यास की प्रमुख नारी पात्र राजनीतिक सम्मेलनों में भाग लेकर 'प्रस्ताव' भी पास करती है। ये पात्र कम्युनिस्ट विचारधारा से पूरी तरह प्रभावित है। नागार्जुन की नारियां युग की आवाज पहचानकर बदलना जानती है। ये नारियां राजनीतिक चेतना में जागृत तथा क्रियाशील हैं।

रांगेय राघव के 'कब तक पुकारूँ' (1957) उपन्यास में राजस्थान की करनट नामक खानाबदोश जाति के जीवन को रूपायित किया गया है। इस जाति की स्त्रियों को गाँव के जमींदार, मुखिया तथा तबके के पुलिस-दरोगा आदि को खुश

करना पड़ता है। इस जाति की नैतिक चेतना इतनी क्षीण हो गई है कि उनके पुरूषों को भी इसमें कोई अनौचित्य नहीं दिखता है। खेल दिखाते समय सुखराम की पत्नी प्यारी पर दरोगा मुग्ध हो जाता है और उसे प्रणय- लीला के लिए बुलाता है, तब प्यारी सुखराम के डर से इन्कार कर देती है, तब प्यारी की माँ औरत धर्म समझाते हुए कहती है कि ये तो औरत का काम है, कौन नहीं करता यह काम, सब करते है। लेखक ने इसमें गहरी मानवीय दृष्टि से दलित-शोषित जाति की स्त्रियों के उत्पीड़न को व्यक्त किया है।

स्वाधीनता के बाद जो उपन्यास आये उनमें भी यह शोषण लीला अनवरत चलती हुई दिख रही है। नागार्जुन का उपन्यास 'रतिनाथ की चाची' तथाकथित कुलिन कहे जाने वाले बिहार के मैथिल ब्राह्मण-परिवारों में विधवा नारी की दयनीय परिस्थिति का चित्रण करने वाला उपन्यास है। 'रतिनाथ की चाची' गौरी एक विधवा ब्राह्मणी है। एक घनी अंधेरी रात में इसका देवर जयनाथ (रतिनाथ का पिता) गौरी पर बलात्कार करता है; जिससे उसे गर्भ रहता है। गौरी सामाजिक लांछनाओं से बचने के लिए माँ के यहाँ जाकर गर्भपात करवाती है। गर्भपात करने वाली चमारिन के शब्द तथाकथित उच्च जाति की उच्चता पर अंगुस्तनुमाई करते है-

''आपकी बदनामी क्या हमारी बदनामी नहीं है? पर एक बात कहती हूँ, माफ करना बड़ी जात वालों की तुम्हारी यह बिरादरी बड़ी म्लेच्छ, बड़ी निष्ठुर होती है मलकाइन।''[1]

भैरवप्रसाद गुप्त कृत 'सत्ती मैया का चौरा' तथा 'गंगा मैया' में भी ग्रामीण क्षेत्रों में जमींदारो के अत्याचारों को रेखांकित किया गया है। वहाँ भी स्त्रियों की

1- रतिनाथ की चाची - नादार्जुन- पृ- 23

स्थिति कमोबेश रूप से वही है। सन् 1945 में मैला आँचल के प्रकाशन के साथ ही आँचलिक उपन्यासों का सूत्रपात हुआ। जहाँ तक नारी-चित्रण का प्रश्न है इस उपन्यास में पिछड़ी जातियों के लोगों की स्त्रियों के नैतिक शोषण और उनके साथ लगातार होने वाले अमानुषी व्यवहार का सिलसिला जारी है। स्वातंत्रयोत्तर काल में मनोवैज्ञानिक उपन्यासों की धारा भी प्रवाहित होती रही है। यहाँ हमें नारी जीवन की सूक्ष्म भावनाओं का चित्रण मिलता है। इस कालावधि में जैनेन्द्र के 'सुखदा' (1952) विवर्त्त (1953) व्यतीत (1953) जयवर्धन (1956) प्रभृति उपन्यास मिलते है।

इलाचन्द्र जोशी के इस समय के उपन्यासों में 'सुबह के भूले' (1952) 'जिप्सी' (1952), 'जहाज का पंछी' (1956) प्रभृति उपन्यास आते है। जोशी जी के उपन्यासों में नारी-पात्रों का चित्रण सहज-स्वाभाविक रूप में न होकर मनोवैज्ञानिक सूत्रों के आधार पर हुआ है।

इलाचन्द्र जोशी के उपन्यासों में भी मनोविज्ञान का ही प्राधान्य है किन्तु वे काल्पनिक चित्रों की अपेक्षा यथार्थ से सम्पृक्त जीवन को अधिक महत्व देते हैं। जोशी जी ने अधिकतर ऐसे नारी पात्रों को ही चुना है जिन्हें जीवन की घनघोर संघर्षमयी परिस्थितियों के आपसी संघर्ष के लिए रासायनिक प्रतिक्रिया स्वरूप भयंकर विस्फोट में परिणत होने की सम्भावना रही है। उनके नारी पात्रों में त्याग और तपस्या की तनिक भी कमी न होने पर भी उन्होने कभी आत्मकामी; अहंवादी और अत्याचार परायण पुरुषों के साथ समझौता नहीं किया है।

मनोवैज्ञानिक उपन्यासकारों में अज्ञेय जी का स्थान अग्रिम पंक्ति में आता है। वैज्ञानिक निरपेक्षता तथा कलागत तटस्थता उनके साहित्य की विशेषता है। वे

टाईप चरित्रों की अपेक्षा व्यक्ति-चरित्रों को समग्रता में प्रस्तुत करने के पक्षधर रहे हैं। इस समय उनका एक उपन्यास आया 'नदी के द्वीप' (1951) अज्ञेय जी का 'शेखर एक जीवनी' (1941-44) जहाँ 'अहं की प्रवृत्ति को केन्द्र में रखकर लिखा गया है, वहाँ 'नदी के द्वीप' मानव-मन की एक अन्य मूलभूत प्रवृत्ति 'सेक्स' से जुड़ा हुआ है।

उनके अनुसार उपन्यास के नायक-नायिका भुवन और रेखा मानव-वेदना की विवृत्ति हैं।

'नदी के द्वीप' की रेखा परित्यक्ता है। रेखा में इतना साहस दिखाया है कि वह सामाजिक मान्यताओं के विरूद्ध उठने वाली मनोभावनाओं को ईमानदारी से कह सके, एकनिष्ठ पत्नी की भाँति उनका दमन या लीलापोती कर स्वयं को पतिव्रतासिद्ध करने का दुराग्रह न पाले। विवाहेतर यौन सम्बन्धों में लिप्त होने के कारण रेखा का यह कर्म अनैतिक प्रतीत होता है। रेखा व भुवन का सम्बन्ध भोग व यौन उच्छृंखलता को प्रश्रय नहीं देता, अन्यथा रेखा चन्द्रमाधव अथवा किसी भी पुरूष के साथ सम्बन्ध स्थापित कर सकती थी।

रेखा को असफल दाम्पत्य जीवन ने आत्मकेन्द्रित कर दिया है। सामाजिक सम्बन्ध जब उसे समाज में सुरक्षा नहीं दे सके तो वह सामाजिक अंकुशों-नियमों को स्वीकार नही करती। इसलीए रेखा अपना भविष्य सामाजिक मर्यादा के आधार पर नही, व्यक्तित्व के रूझान पर तय करती है। अन्तरंग जीवन में सामाजिक हस्तक्षेप न स्वीकारने के कारण रेखा भुवन के प्रति अपने सम्बन्ध के औचित्य को लेकर कहीं भी दुविधाग्रस्त नहीं है। 'नदी के द्वीप' में गहरी अन्तर्दृष्टि; आस्था; समन्वित आधुनिक-संवेदना मिलती है।

डॉ. देवराज के इस समय के मनोवैज्ञानिक उपन्यासों मे 'पथ की खोज' (1951), 'बाहर-भीतर' (1954); 'रोड़े और पत्थर'(1958) है; जिनमें शिक्षित बुद्धिजीवी वर्ग की मानसिक कुष्ठाओं का चित्रण है।

जैनेन्द्र के नारी पात्र प्रायः आत्मपीड़क स्वतंत्र प्रकृति के तथा क्रांतिकारियों को चाहने वाले बताए गये है। अपनी आत्म व्यथा में लीन रहना उनकी प्रकृति है।

मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में सर्वेश्वरदयाल कृत 'सोया हुआ जल' (1955), सूर्यकुमार जोशी कृत 'दिगम्बरी' (1957), नरेश मेहता कृत 'डूबते मस्तुल (1954) आदि उल्लेखनीय है।

'दिगम्बरी' की नायिका हिन्दी उपन्यास-साहित्य की एक ऐसी नायिका है, जिसके जीवन में सत्ताइस पुरूष आते है। उक्त उपन्यासों में नारी यौन- क्षुधा तथा उसकी यौन-अभुक्ति को लेखकों ने खुलकर रेखांकित किया है।

इस प्रकार हम देखते है कि श्रद्धाराम फुल्लौरी के उपन्यास- 'भाग्यवती' की भाग्यवती से लेकर अज्ञेय के 'नदी के द्वीप' की रेखा तक में महिलाओं ने वाणी-व्यवहार सोच-समझदारी तथा नारी-चेतना की दृष्टि से एक निश्चित यात्रा अवश्य तय की है। यद्यपि आज भी नारी का शोषण हो रहा है, नारी शोषण के कोणो में परिवर्तन हुआ है, और किन्ही स्थितियों तक आज भी नारी पद्दलित है। तथापि मध्यकालीन और सामन्तकालीन खोल से नारी गुलामी की बेड़ियो को औड़ भी तोड़ती जाएगी। बहरहाल नारी बाहर आयी है; इतना तो कह ही सकते है। नगरीय क्षेत्रों में और कहीं-कहीं ग्रामीण क्षेत्रों में भी शिक्षित नारी आर्थिक दृष्ट्या आत्मनिर्भर होने के कारण कुछ स्वतंत्रता का अनुभव कर रही है। जैसे-जैसे नारी शिक्षा का प्रमाण बढ़ेगा और नारी-चेतना के परिणामों में वृद्धि होगी, वैसे-वैसे नारी गुलामी की बेड़ियों को और भी तोड़ती जाएगी। बहरहाल नारी हजारों साल की गुलामी से कुछ-कुछ बाहर आ पायी है, यह एक श्लाघनीय तथ्य है।

संदर्भ सुची

1. द टाइम्स आफ इण्डिया : दिनांक - 10-6-96 - पृ. 3
2. गोदान : प्रेमचन्द : पृ. 253
3. निर्मला : प्रेमचन्द : पृ. 190
4. शोले : भैरवप्रसाद गुप्त : पृ. 120 से 121
5. मैला आंचल : फणीश्वरनाथ रेणु : भूमिका से उद्धत
6. रतिनाथ की चाची :नागार्जुन : पृ. 23